RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-05
Issue-04
April -2020

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]

संत चरणदास जी के दार्शनिक विचारों में (भक्ति, समाज एवं विचारधारा)

[1]डॉ. राजेन्द्र सिंह; [2]पूनम सैनी

[1]शोध निर्देशक, व्याख्याता (हिन्दी), श्री कल्याण राजकीय महाविद्यालय, सीकर, (राज.)
[2]शोधार्थी, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)

ARTICLE DETAILS

Article History
Published Online: 16 Apr 2020

Keywords
धार्मिक, अंधविश्वासों, नैतिक मूल्यों, आडम्बरों, कुरूतियों, अद्योपतन।

ABSTRACT

संत चरणदास जी और उनके अनुयायियों द्वारा विपुल साहित्य की रचना की गई उनमें मानवीय नैतिक एवं सामाजिक गुणों की प्रधानता देखने को मिलती है। मेरा ऐसा मानना है कि तत्कालीन समाज में मानवीय एवं नैतिक मूल्यों का सबसे ज्यादा अद्योपतन हुआ था। समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर कर मानवीय एवं नैतिक मूल्यों की स्थापना में इस सम्प्रदाय द्वारा किया गया प्रयास सराहनीय है। संत चरणदास जी ने अपने समय के समाज में व्याप्त धार्मिक, अंधविश्वासों, आडम्बरों, कुरूतियों और सामाजिक असमानता की तीखे शब्दों में आलोचना की। इस दृष्टि को रखते हुए संबंधित तथ्यों का विवेचन किया जा रहा है।

शोध विस्तारः—संत चरणदास ने गुरू भक्ति पर अत्यधिक जोर दिया है। उनका कहना है कि तीन लोक ढूंढ आया हूँ मगर गुरू के समान और कोई नहीं मिला। वे भक्ति पदारथ के माध्यम से कहते है कि गुरू सोने के समान है जो सचेत करते है गुरू ब्रह्या और विष्णु के समजान है जो रिक्तता को भरते है, गुरू गंगा के समान है जो सब पापों को धो डालते है, गुरू सूर्य के समान है जो अन्धकार को हरता है तथा गुरू साक्षात परमब्रह्य है जो मुक्ति पद को देने वाला है। प्रभु की यदि 16 वर्ष सेवा की जाय और गुरू की सिर्फ 4 पल ही तो भी उसकी बराबरी नहीं हो सकती। यह उनके इस पद में दृष्टव्य है—

हरि सेवा सोलह बरस, गुरू सेवा पल चार।
तो भी नहीं बराबरी, वेदन कियो विचार।।[1]

निम्न पद में संत चरणदास अपने गुरू से बड़े दीन भाव से यही प्रार्थना करते है कि आप मेरी सुरति मत बिसरा देना। आपकी दया के फलस्वरूप ही मुझे ज्ञान और भक्ति प्राप्त हो सकती है और मेरी व्यथाओं को दूर करने का एक चूर्ण (औषधि) ज्ञान और भक्ति है। उसी की मैं आप से भिक्षा मांगता हूँ।

अब जग फंद छुटावो जी हो तो चरण कमल को चेरो।
परो रहूं दरबार तिहारे संतन माहि बसेरो।।
बिना कामना करू चाकरी आठों पहरे नेरो।
मनसब भक्ति कृपा करि दीजे मोहि यही बहुतेरो।।[2]

इसमें निम्न बातों पर जोर दिया गया है— (1) एक तो यह कि संसार में नाता केवल संत जनों के साथ ही रखा जाय। (2) दूसरा भगवान की सेवा चाकरी में जीवन की श्वांसों को बिताया जाय और बदले में ईश्वर से सांसारिक सुखों की मांग न की जाय। (3) भगवान का सुमिरण ऐसे चित्त लगाकर किया जाय कि सुमिरण करते समय ध्यान किसी ओर बात में न जावे। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वे वस्तु व कार्य जो सांसारिक सुख प्रदान कर अंत में दुख का कारण ही बन जाते है, उनका भगवान से मांगना मूर्खता है। जीव का भला इसी में है कि अगर मांगना ही है तो मांगे ''संतन माहि बसेरो'' जिसके परिणामस्वरूप भक्ति का अंकुर हृदय में फूटे और भगवान की चाकरी करने का अवसर मिले। अंत में आत्मसमर्पण कर भगवान से यही प्रार्थना करनी चाहिए कि आप ही मेरा निवेरा करने में समर्थ है और मेरे लिए कहीं स्थान नहीं है।

जग में दो तारण को नीका।
एक तो ध्यान गुरू का कीजे दूजे नाम धनी का।।
कोटि भांति करि निश्चय किया संसय रहा न कोई।
शास्त्र वेद पुराण टटोले जिनमें निकसा सोई।।[3]

उक्त पद में संत चरणदास ने यह बताया है कि भवसागर से तारने वाली दो ही शक्तियां है। गुरू को ईश्वर रूप जान व मानकर अति आदर पूर्वक भक्ति और श्रद्धा से उनकी सेवा ध्यान में लगे रहना, 2—भगवान के नाम का सुमिरण। इनसे बढ़िया साधन संतजी के आंकने के आंकने में नहीं आये।

आदि निरंजन एक तू दूजा नहि कोई।
शुकदेव कही चरणदास को नित सुमिरो सोई।।[4]

यह पद बहुत ही महत्व का है। ऐसा मालूम पड़ता है कि संत चरणदास ने अपने शब्दों में राम के वास्तविक रूप को समझने की चेष्टा की। जब सन्त चरणदास ने देखा कि साधक भी ''राम'' शब्द का अर्थ ठीक न समझकर इसके बाहरी रूप से विचलित हो जाते है और उनका सुमिरण लक्ष्य से बहुत दूर रह जाता है तो उन्होंने इस पद की रचना कर साधकों को समझाया कि जिस राम के सुमिरण करने को वह कहते है वह दशरथ पुत्र राम नहीं है बल्कि वह राम है तो आदि निरंजन है। सन्त महात्मा जब ईश्वरीय परम तत्व की ओर संकेत करते है तो अधिकतम दो शब्दों का प्रयोग करते

RRIJM 2015, All Rights Reserved

है। (1) राम (2) सत्। उस परम तत्व के लिए राम शब्द का प्रयोग इसलिए करते है कि मनुष्य की सारी वृत्तियों के रमण करने का वह परमोत्कृष्ट क्षेत्र है। संतजी की रचनाओं में जहां कही ''राम नाम'' के सुमिरण को कहा गया है वहां यही समझना चाहिए कि आदि निरंजन भगवान का ही सुमिरण करना है।

जो कुछ किया सोई अब पावो, वहीं लुनौ जो बोया रे।
साहिब संचा न्याय चुकावै, ज्यों का त्यों ही होया रे।।
कहूं पुकारे सब सुन लीजो, चेत जाब नर लोया रे।
कहै शुकदेव चरण ही दासा, यह मैदान यह गोया रे।।[5]

उपरोक्त पदों में एक तरफ मनुष्य का ध्यान इस ओर आकर्षित किया गया है, कि उसने अपने आप को उन सांसारिक बंधनों में फंसा दिया है, जो उसकी आध्यात्मिक प्रगति का रास्ता रोक, उसके और भगवान के बीच एक दीवार खड़ी किये हुए है। जब तक संसार से मोह न हटाया जायेगा, जीवन के लक्ष्य प्राप्त करने के किसी साधन के सफल होने की आशा नहीं रखनी चाहिए। इन्हीं पदों में अनेक उपदेश देने के बाद संत जी ने कड़ी चेतवानी भी दी है कि यदि धर्मानुसार जीवन न चलाया गया तो अन्त में पछताना ही पड़ेगा। इन पदों में इसलिए हर वस्तु में मोह के त्यागने का उपदेश देते हुए मोह को दूर करने के अनेक साधनों की ओर संकेत किया गया है। यदि जीवन में उन साधनों का प्रयोग कर लाभ उठाया जाय तो मनुष्य जीवन सार्थक सिद्ध हो सकता है। जिन साधनों की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है उनमें से कुछ इस प्रकार है–ईश्वर भजन व सुमिरन, सत्तसंग बुरे कर्मो को त्याज्य मानना व सत कर्मो को करना आदि। जैसे–जैसे संसार की असारता व जीवन की क्षण भंगुरता का बोध होने लगेगा साधनकों को ईश्वर प्राप्ति के साधनों पर ही ध्यान देना चाहिए जिससे ईश्वर प्राप्ति सुगम हो सके यही संत चरणदास का कहना है। साधना अपना प्रभाव दिखाकर जीवन में परिवर्तन लाने लगेगी।[6]

संत चरणदास द्वारा रचित पदों को पढ़ने से यह विचार मन में आ सकता है संत महात्मा कुछ ऐसे उपदेश भी देते है जिनका पालन करना गृहस्थ के लिए तो अत्यन्त कठिन है और कुछ यह भी कह सकते है कि नितान्त असंभव है, पर वास्तव में ऐसा नहीं। संत चरणदास और अन्य संतों की वाणी में कुछ ऐसा पढ़ने को मिलता है कि कनक और कामनी ही माया जाल में डालने वाली है माया परिवार में से सबसे प्रबल है। इससे बचना चाहिए तभी मनुष्य अपने जीवन लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है यह विचार आ सकता है कि यदि धन व स्त्री से नाता तोड़ देंगे तो संसार कैसे चलेगा, मनुष्य भूखा रह जायेगा और उसे संतान की ओर कोई आशा ही नहीं रखनी चाहिए। फिर विवाह आदि के चक्कर में पड़ने से लाभ ही क्या होगा अथवा कुछ नहीं। इस भूमिका में समाज जैसे संगठन को तो कोई आवश्यकता नहीं होगी। वास्तविकता यह है संत चरणदास ने धन व स्त्री को त्याज्य नहीं बताया न वह इसके खिलाफ ही है। वह दर्शन जो संत महात्मा समाज के सामने रखते है या प्रस्तुत करते है केवल वह बताया है कि मनुष्य को धन की तृष्णा नहीं रखनी चाहिए। उसी के त्यागने पर वे बल देते है। उनका उपदेश है कि मनुष्य को अपनी ईमानदारी मेहनत से जो मिल जाय, उसमें संतोष रखना चाहिए और जीवन में बर्गर छल कपट के धन उपार्जन करे और अपने कुटुम्ब साहित्य अपनी आवश्यक आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयत्न करें। यदि ऐसा करेंगे और इस मार्ग पर चलेंगे तो उनकी आवश्यक आवश्यकताए ईश्वर पूरी करेगा क्योंकि ईमानदारी का फल ईश्वर देता है, इसमें कोई संशय नहीं।[7]

यही दृष्टिकोण संत चरणदास पुरूष को अपनी भार्या के प्रति अपनाने का देते है। उनका उपदेश है कि भार्या को कामुक दृष्टि से न देखकर इस प्रकार सोंचे कि वह तो संतान उत्पादन का एक ईश्वरीय साधन है, काम तृप्ति की कोई वस्तु नहीं। ऐसी दृष्टि अपनाने से धन व स्त्री लक्ष्य प्राप्ति में बाधक न होकर सहायक ही होंगे। संत के उपदेशों को इसी रूप में ग्रहण करना चाहिए।

गुरू के समान चरणदास ने सत्तसंग को भी उतना ही महत्व दिया है जितना कि गुरू की महत्ता को। वे तप से ज्यादा सत्तसंग को महत्व देते है, उनका कहना है कि तप यदि एक हजार वर्ष किया जाय और सत्तसंग सिर्फ एक घड़ी तो भी सत्तसंग तप से ज्यादा श्रेष्ठ है। उनके अनुसार चाहे तपस्वी हो या मौनी। बिना साधु संगत के उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती।

साधु संगत बिन गति नहीं होनी।
क्या तपसी अरू क्या भया मौनी।।[8]

संत चरणदास ने माया जीव जगत आदि पर भी अपने विचार प्रकट किये है जो ठीक अन्य निर्गुण संतों की तरह ही है। माया को वे सिर्फ व्यापक मानते है वह प्रत्येक वस्तु में चाहे वह जड़ हो या चेतन स्थित रहकर उनको विनाशशील और अस्थायित्व प्रदान करती है। उनके अनुसार आँख, कान, जिह्वा तथा मन, माया की वृद्धि और प्रसार में विशेष सहायक बताया है। उन्होंने माया की निन्दा की है और उसे कभी ठगनी, कभी जात, कभी पापनी वैश्या आदि शब्दों से पुकारा है। ठीक उसी तरह से लोकविख्यात महात्मा कबीरदास के भजन ''माया महाठगनी हम जानि'' जगत के सबंध में श्री चरणदास का विचार है– यह असार, असत्य और स्वप्न के समान है। एक मात्र प्रभु ही सत्य है। सबद में वे कहते है कि प्राणी को केवल एक मात्र सत्य प्रभु का ही स्मरण करना चाहिए।

दुख–सुख संताप पश्चाताप आदि सब करनी के फल है। सुर दानव राजा रंक अप्सरा, यक्ष, मनुष्य आदि सब कर्म के अनुसार नयी योनी प्राप्त करते है। इससे ऐसा प्रतीत

होता है कि संत चरणदास भाग्यवादी और पाप व पुण्य, परक और स्वर्ग की प्रचलित धारणा को मानते थे। उनके अनुसार जाति, वर्ण आश्रम सभी कर्म के अनुसार प्राप्त होते है। कर्म से ही मनुष्य खोता पाता है और बुरे कर्म से नरक की प्राप्ति होती है।

संत चरणदास ने समाज के सदाचार पक्ष पर बल दिया है तथा अपनी वाणी में स्थान–स्थान पर नैतिक सत्यता के साथ जीवन–यापन करने का उपदेश दिया है जिसके अन्तर्गत झूठ न बोलने, निन्दा न करना, कठोर वचन न बोलना, चोरी और हिंसा न करना, झूठ कपट व छलका त्याग करना किसी से बैर न रखना इन्द्रियों को वश में रखना आदि है। इसके साथ ही सत्यशील संदेश क्षमा दया आदि गुणों को धारण करने का आग्रह किया है। भक्ति पदारथ का यह पद दृष्टव्य है–

दया नम्रता दीनता क्षमा शील संतोष।
इनकू ले सुमिरन करे निस्प्र पावे मोक्ष।।[9]

शील को तो संत चरणदास मानव का अनिवार्य गुण मानते है। तप और दान जैसे शुभ कार्यों में संलग्न मानव आदि शील से विहीन है तो उसके समस्त साधन व्यर्थ है क्योंकि मानव की वास्तविक शोभा शील हैं। शील का स्थान तो सत्य से भी ऊंचा और महान है। संत चरणदास का यही उपदेश है कि मनुष्य को शील की रक्षा करनी चाहिए, जिससे जन्म सुधरने के साथ हरि की भी प्राप्ति होगी।

लाख यही उपदेश है एक शील कूं राख।
जन्म सुधारी हरि मिलौ चरणदास की साख।।[10]

संत चरणदास ने समाज के सदाचार पक्ष पर बल देने के साथ–साथ समाज में प्रचलित बाह्यचारों का भी स्थान–स्थान पर विरोध किया है। उनके अन्तर्गत अंग पर विभूति लगाना, धूनी तपना, जटा बढ़ाना, मूंड मुडाना वन में विचरण करना तीर्थ करना व्रत करना आदि प्रमुख है। उनका कहना है कि घट ही तीर्थ आदि है। इसलिए मनुष्य को इधर–उधर न भटक कर अपने ह्रदय में भी ईश्वर को ढूंडना चाहिए। वे फिर कहते है कि तप, तीर्थ, व्रत, साधना आदि कोई भी राम नाम के तुल्य नहीं है। ''तप, तीरथ व्रत, साधना, राम नाम सम नाहि।'' साथ ही संत चरणदास ने अपनी वाणी में स्थान स्थान पर काम, क्रोध, मौह, ममता, अभिमान आदि का भी सर्वथा परित्याग करने का उपदेश दिया है।[11]

मधुरा भक्ति के पद उनके काव्य में जगह–जगह दिखाई देते है इन पदों में उन्होंने कहीं भगवान कृष्ण के प्रति सखी भाव को व्यक्त किया है और कहीं अपना प्रियतम माना है और स्वयं को प्रेमिका। वे कृष्ण के विरह में व्याकुल होकर कह उठते है–[12]

कोई आनि मिलावो री, श्याम सुजान कुं।
नन्द दुलारो मोहन सोहन, अजब अनोखो छला।।
मदनगुपाल मुकुन्द मुरारी, मेरो जीवन प्रान री।
नैनन नींद न आवै सजनी, कल न परै दिन रैना।[13]

संत चरणदास ने गुनातीत ब्रह्य का भी वर्णन किया है वह न निराकार है न ही साकार, वह न तो हद में और न बेहद में, वह दोनों ही सीमाओं से परे है। वह न एक है न दो है, न दूर है न निकट है उनके अनुसार तो ब्रह्य को केवल न तो ऐसा न वैसा ही कहा जा सकता है।

हद कहूं तो है नहीं, बेहद कहो तो नाहि।
हद बेहद दोनो नाहि चरणदास भी नाहि।
ज्यों का त्यों, जैसे का तैसा। नहीं ऐसा नहीं कहिये वैसा।[14]

संत चरणदास का ब्रह्य अग्नि में त्रण को सुरक्षित रख सकता है, राई को पर्वत बना सकता है, बिना बादलों के वर्षा कर सकता है, छत्रपति को रंक बना सकता है, सागर में पहाड़ तैरा सकता है, गूंगा वेदों का पाठ कर सकता है, अंधा ज्योति स्वरूप हो सकता है और हाथी सुई की नोंक से निकल सकता है ऐसा सर्वसामर्थ्य सम्पन्न जिसके लिए असंभव भी संभव है। ऐसा है संत चरणदास का ब्रह्य।

संत चरणदास के अनुसार ऐसे ब्रह्य की प्राप्ति योग साधना के द्वारा की जा सकती है। उनके तीन ग्रन्थ अष्टांग योग, योग संदेश सागर व ज्ञान सरोदय सागर इसी धारणा से ओतप्रोत है। अष्टांग योग की साधना के पूर्व साधक के लिए संयम करना आवश्यक है। निद्रा, स्वाद, इन्द्रिय नर नारि के व्यवहार में संयम पर अधिक जोर दिया गया है। इसके साथ ही साधक को अल्पहारी अल्पभाषी व एकान्तवासी भी होना आवश्यक है क्योंकि एकान्तवासी स्वतः अल्पभाषी होगा। इसके बाद साधक को समाधि की अवस्था तक पहुंचने के लिए योग के 8 अंगो यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि की साधना करनी पड़ती है।[15]

सर्व प्रथम यम की साधना में उसके 10 उपांगों को अहिंसा, सत्य, अरतेय, ब्रह्यचर्य, क्षमा, धैर्य, दया, आर्णव निराहार, मिताहार तथा शोच आदि धारण करना आवश्यक है। यम के बाद साधक नियम की साधना करता है जिसमें इन्द्रियवश, संतोष आस्तिक भाव, दान ईश्वर पूजा, सिद्धान्त दृढ़मति जाप ओम आदि को अपनाता है। इसके बाद साधक आसन की साधना करता है। संत चरणदास के अनुसार योग का आधार आसन है। आसनों में चरणदास ने सिद्धासन और पद्मासन को ध्यान समाधि की साधना में विशेष सहायक एवं उपयोगी बताया है। प्राणायाम आसन सिद्धी के बाद की प्रवृत्ति हो जाती है जिसमें श्वास एवं प्रश्वास की गति को स्थगित किया जाता है। प्राणायाम के अभ्यास एवं शक्ति साधन शरिरस्य नाडियॉ सक्रिय एवं अतिजात हो जाता है और शनैः शनैः साधक में योगिक शक्तियों का विकास होने लगता है। प्राणायाम के बाद साधक प्रत्याहार की साधना करता है जिसमें संत चरणदास ने इन्द्रिय विग्रह पर बहुत जोर दिया है जिस प्रकार कछुआ अपने हाथ पैर एवं सिर को अन्दर कर लेता है उसी प्रकार साधक को अपनी इन्द्रिया अन्तरमुखी कर लेनी चाहिए। इन्द्रियों के विरोध से मन का निरोध होता है और

समस्त विषय नष्ट हो जाते है। प्रत्याहार के पश्चात् धारणा की साधना को जाती है जिसमें मन को किसी स्थान या वस्तु विशेष पर केन्द्रीय भूत किया जाता है और इसके बाद ध्यान की साधना आती है।[16]

संत चरणदास का यह भी कहना है कि अष्टांग योग के प्रथम छः अंग की साधना करते करते ध्यान की योग्यता साधक को स्वतः ही प्राप्त हो जाती है इसके पश्चात् वह अपने ब्रह्म के ध्यान में दत्तचित हो जाता है और अंतिम स्तर समाधि में प्रवेश कर जाता है। समाधि में मन की एकात्मकता अपनी चरम सीमा तक पहुंच जाती है एवं साधक के हृदय एवं मस्तिष्क में केवल एक ही प्रकाश और विचार रह जाता है वह है परम ब्रह्मा साधक अपने अस्तित्व को खोकर ब्रह्म में उसी तरह से मिल जाता है जैसे जल में जल दूध में दूध मिलकर एकत्व को प्राप्त कर लेते है।[17]

संत चरणदास का अष्टांग योग वर्णन कोई नयी चींज नहीं है न ही उनकी मौलिक देन है। यह सब बाते योग दर्शन के माध्यम से अनादि काल से चली आ रही है और भारत के जनजीवन में व्याप्त और प्रचलित रही है चाहे मनु हो, चाहे पातंजलि हो, चाहे तुलसीदास हो चाहे कबीर और चाहे लालदास। सभी संतों ने इन्हीं प्रचलित तथ्यों पर बल दिया है फर्क यही है कि किसी में ज्यादा और किसी में कम।

संत चरणदास ने अपने भक्ति पदों में जहां सगुण व निर्गुण भक्ति का समावेश किया तथा भक्ति के अनेक पदों में उन्हें समन्वित कर उसे जन जन तक पहुंचाया वहीं उन्होंने हरिजन अथवा शूद्र जाति के लोगों को श्रेष्ठ बताकर ऊंच–नीच की भावना का भी विरोध किया। उन्होंने कहा कि भक्ति एक ऐसा मार्ग है जिसे जो अपना ले वहीं श्रेष्ठ हो जाता है। मानव मात्र सब समान है और प्रभु भक्ति के अधिकारी है। शूद्रतम व्यक्ति भी प्रभु की भक्ति करने से स्वच्छ हो जाता है और उन्होंने अपनी बात को अनेक पौराणिक उद्धरण देकर सिद्ध किया है।

चारि वरण सो हरिजन ऊंचे।
भये पवित्तर हरि के सुमिरे तन के उज्जवल मन के सूचे।।
जो न पतीजे साखि बताऊं शबरी के झूठे फल खाये।
बहुत ऋषीश्वर ह्यंई रहते तिनके घर रघुपति नहीं आये।।
भीलनी पांव दियो सरिता में शूद्ध भयो जल सब कोई जाने।
मन्द हुतो सो निर्मल हुवो अभिमानी नर भये खिसाने।।[18]

संत चरणदास जी कहते है कि वहीं कुल अच्छा है जिसमें भक्ति करने वाला योग्य भक्त हो। हरिजनों को प्रभु ने स्वयं मान सम्मान दिया। हरिजनों को प्रभु ने स्वयं मान सम्मान दिया। भगवान राम ने भीलनी के झूठे बेर खाये भगवान राम अनेक ऋषियों और तपस्वियों के होते हुए भी, उनके घर न जाकर भीलनी के घर गये। श्वपच को भोजन कराने पर ही पांडवों का यज्ञ पूरा हुआ तथा वाल्मिकी ने ही यज्ञ को पूर्णता अयोध्या में की। इस प्रकार हरिजन ही चारों वर्णों में श्रेष्ठ है और संत का यह मत है कि हरिजनों को निम्न न समझकर उन्हें सम्मान दिया जाना चाहिए।[19]

इसी प्रकार एक अन्य पद में भी हरिजनों की श्रेष्ठता सिद्ध की है और उन्हें सभी जातियों से श्रेष्ठ बताया हैः दुर्बासा ऋषि द्वारा अंबरीष को शाप देने पर विषणु जी ने स्वयं अपने सुदर्शन से अंबरीष की रक्षा की। इसी प्रकार दुर्योधन के घर विविध प्रकार के व्यंजन व सुख सुविधाओं वाले राजप्रसादों के होते हुए भी भगवान कृष्ण ने विदुर के घर पर ही भोजन किया। संत चरणदास कहते है कि वेद पुराण सबकी यह मान्यता है कि भगवान भक्तों के वश में है और द्वापर, त्रेता तथा कलयुग में बिना जाति धर्म का विचार किये प्रभु ने भक्तों की लाज रखी इसलिए जातिकुल का विचार नहीं करना चाहिए और किसी को भी निम्न नहीं समझना चाहिए।[20]

निष्कर्षः– संत चरणदास निर्गुण और सगुण दोनों ही प्रकार की भक्ति शाखा में विश्वास रखते थे। श्री कृष्ण का वर्णन उनके ग्रन्थों में अनेक जगह उपलब्ध हुआ है जैसे ब्रज चरित्र, अमर लोक, आण्ड धाम वर्णन, नासकेत लीला, सबद आदि ग्रन्थ। इन ग्रन्थों में चरणदास ने सगुण योगेश्वर श्री कृष्ण के आनन्ददायी रूप का वर्णन किया है जिसमें भक्ति करने का इनका बार–बार आग्रह प्रतीत होता है। भक्ति पदारथ तथा सबद नामक उनके दो ग्रन्थों में भक्ति की महिमा, भक्ति के द्वारा प्राप्त करने वाले साधकों के नाम और भक्ति की आवश्कता, सतसंग जाप का माहात्म्य, भक्ति व संतों का माहात्म्य का वर्णन तो किया ही है साथ में सहायक तत्व, शील, दया आदि नबधा भक्ति की विशेषता और उसके विभिन्न आयाम जैसे श्रवण, कीर्तन, स्मरण, अर्चन वन्दन हास्यभाव, शून्य भव आत्म निवेदन तथा उसके महत्वपूर्ण प्रभाव का वर्णन किया है। भक्ति में जो बाधा तत्व है काम, क्रोध, लोभ, मोह, अभिमान, माया, मन और इन्द्रिया ये सब उनके भक्ति संबंधी व्यवधान में वर्णित हुए है। भगवान कृष्ण की विभिन्न लीलाएं, उनके प्रति आत्म समर्पण आदि पर चरणदास ने विशेष रूप से जोर दिया है। भगवान कृष्ण की इस भक्ति में संत चरणदास की भक्ति का रूप साख्य या सखाभाव है। विशेषकर सखी रूप में भक्ति की विशेष महिमा पर जोर दिया गया है।

संदर्भ सूचीः–

1. चरणदास कुल, भक्ति पदारथ, गुरू का अंग, पृ. 146 (अटल बिहारी मंदिर जयपुर ग्रन्थांक)
2. वहीं पृ. 147, 151
3. चरणामृत–भाग 2 (कैलाशनाथ भार्गव) पृ. 55

4. सुदर्शनसिंह मजीठीया–संत साहित्य, पृ. 272
5. चरणदास कृत सबद (हस्तलिखित) पृ. 219
6. दयाबाई कृत–दयाबोध
7. कैलाशनाथ भार्गव–उपरोक्त, पृ. 219
8. तुलसीदास–राम चरित्र मानस
9. संत चरणदास भक्ति पदारथ–पृ. 152
10. उपरोक्त
11. पेमाराम मध्यकालीन राजस्थान में धार्मिक आन्दोलन, पृ. 163
12. चरणदास–धर्म जहाज (ह.ग्र.) प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, पृ. 24–25
13. पन्नालाल भार्गव–श्री स्वामी संत चरणदास महाराज का जीवन चरित उर्दू, पृ. 10–11
14. संत चरणदास–भक्ति पदारथ, पृ. 174
15. वहीं
16. पेमाराम उपरोक्त, पृ. 166
17. चरणदास कृत स्वरोदय, नासकेत लीला, ब्रज चरित्र इत्यादि।
18. चरणदास भक्ति सागर
19. वहीं
20. चरणदास मन विरक्त करण गुटका, पृ. 210

RRIJM 2015, All Rights Reserved